ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 111-113
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-8, No.-II, Issues-IX YEAR- Dec-2017

स्वामी दयानन्द सरस्वती के चिन्तन में राज्य एवं लोक कल्याण की अवधारणा

डॉ0 अरुण कुमार तिवारी
एसोसिएट प्रोफेसर– राजनीति विज्ञान विभाग, मुनीश्वर दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय प्रतापगढ़ (उ0प्र0), भारत

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना सम्पूर्ण राजनीतिक चिन्तन भारतीय परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर व्यक्त किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में मैंने यह देखने का प्रयास किया है कि दयानन्द सरस्वती का राजनीतिक चिन्तन पाश्चात्य चिन्तन से हटकर किस प्रकार वेद आधारित चिन्तन है? उन्होंने वेदों की वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील व्याख्या करते हुए अपने राजनीतिक चिन्तन को उसी से निकला हुआ बताया है और उसी में लोक कल्याण की अवधारणा को ढूढ़ निकाला है। उनका मत था कि वेद अपौरुशय हैं। इनकी रचना ईश्वर ने की है। वेद मानवीय सभ्यता के मूल आधार हैं तथा राजनीति को वेद प्रदत्त शास्त्र के रूप में माना जा सकता है। ईश्वर ही शासन व्यवस्था को देने वाला है। अतः वेद प्रदत्त शासन व्यवस्था ही मान्य होनी चाहिए। राजनीतिक अन्वेषण की पाश्चात्य परम्परा भारत के लिए किसी भी रूप में उपयोगी नहीं हो सकती है।[1] अपने राजनीतिक विचारों का भी वेद सम्मत दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए स्वामीजी ने महिधर और सायण के वेदभाष्यों को स्वीकार नहीं किया। उनका मत था कि सायण और महिधर की व्याख्या रुढ़िवादी और परम्परागत है जो आज के परिप्रेक्ष्य में अमान्य है। वेदों की प्रगतिशील और वैज्ञानिक व्याख्या होनी चाहिए। इसी आधार पर उन्होंने राजनीतिक विचारों को नवीन रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'ऋग्वेद भाष्य' तथा 'ऋग्वेदादि–भाष्य–भूमिका' में वेदकालीन राजनीतिक व्यवस्था एवं विचार को प्रस्तुत करते हुए लिखा कि "परम्परागत वेद भाष्यों में वर्णित वैदिक देवी–देवताओं जैसे–इन्द्र, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु आदि को देवता मानना अज्ञानता है तथा यह वेदों की अतार्किक व्याख्या है। ये देवी–देवता न होकर शासन के प्रकार हैं तथा इनके तात्विक गुणधर्म से इनकी व्याख्या होनी चाहिए न कि देवताओं के रूप में पूजा अर्चना"।[2] स्वामी दयानन्द का यह कथन सिद्ध करता है कि वे अपना नवीन राजनीति चिन्तन वेद पर आधारित मानते हैं। वेदों के विचार को ही उन्होंने नये रूप में प्रस्तुत करने का कार्य किया है। उनके विचारों को देखकर ही बी0बी0 मजूमदार ने लिखा है कि स्वामी दयानन्द वास्तव में राजनीतिक विचारों के व्यक्ति थे। आधुनिक समय में उन्होंने ही सर्वप्रथम आर्यो की राजनीति का विशद चित्रण प्रस्तुत किया है। वेदों, उपनिषदों, धर्मशास्त्रों एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने भारत की प्राचीन राजनीतिक विचारधारा को पुनः प्रकाशित किया। स्वामी दयानन्द राजनीतिक अन्वेषकों में महानतम हैं।[3]

स्वामी दयानन्द सरस्वती राज्य को सकारात्मक रूप में स्वीकार करते हैं और उसे एक विकसित एवं लोकहितकारी संस्था के रूप में देखते हैं। वे राज्य को चारों पुरुषार्थों–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन मानते हैं। उनके अनुसार राज्य इहलोक और परलोक की साधना का माध्यम है। स्वामी जी राज्य को समुदायों का समुदाय मानते हैं। वे राज्य को एक महत्वपूर्ण समुदाय मानते हुए भी अन्य समुदायों का उल्लेख करते हैं। उनका यह विचार आधुनिक बहुलवादी विचारकों की तरह ही दिखाई देता है। वे राज्य के साथ तीन अन्य समुदायों का भी उल्लेख करते हैं जो राज्य के समुचित संचालन के लिए आवश्यक है। प्रथम राजनीतिक समुदाय, द्वितीय विज्ञान एवं कला सम्बन्धी समुदाय तथा तीसरा धर्म एवं नैतिकता सम्बन्धी समुदाय। अपने इन विचारों को व्यक्त करते हुए दयानन्द सरस्वती ने लिखा कि "राजा–प्रजा के सम्बन्ध को व्यवहारिक रूप देने के लिए विद्यार्य्य सभा, धर्मार्य्यसभा और राजार्य्य सभा नियत करके सब प्राणियों को विद्या, स्वतन्त्रता, धर्म, सुशिक्षा और धन आदि से अलंकृत किया जाना चाहिए"।[4] दयानन्द के इस कथन से स्पष्ट है कि वे एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना चाहते थे। इस राज्य में राजा एवं प्रजा के बीच समन्वय भी एक आवश्यक शर्त थी।

स्वामी दयानन्द ने जन कल्याण के समुचित प्रतिपादन के लिए सदैव योग्य और शिक्षित व्यक्तियों के निर्वाचन पर बल दिया। स्वामीजी के अनुसार विद्वान एवं प्रतिभाशाली व्यक्तियों को ही कला और विज्ञान अकादमियों के लिए निर्वाचित किया जाय। विद्वान, प्रसिद्ध एवं पवित्र आचरण वाले लोगों को ही धर्मसभा और राज्यसभा के लिए चुना जाय। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दयानन्द ने सभी सभाओं में नियुक्त या मनोनीत सदस्यों के स्थान पर निर्वाचित करने का विचार रखा है। यह अपने आप में उनके जनतांत्रिक एवं स्वातन्त्रता के प्रेम के विचार को प्रकट करता है। दयानन्द ने तीनों सभाओं को सभी कार्यों के लिए समन्वय से कार्य करने और स्वतन्त्र तथा आत्मनिर्भर होकर निर्णय लेने

अनुरूपी लेखक

का उसी प्रकार अधिकार है जैसे अन्य वर्णों को है।[8] शूद्र वर्ण के उत्थान के लिए उन्होंने उन्हें वेदानुरूप आचरण करने एवं उनको हिन्दू समाज में प्रतिश्ठा दिलाने का आहवान किया। स्वामी दयानन्द का अछूतों के प्रति जो विचार रहा है उससे भारतीय जनमानस बहुत हद तक परिवर्तित हुआ और दलितों के सम्मान में वृद्धि की षुरुआत हुई। स्वामी दयानन्द ने लोककल्याण के लिए केवल अछूतों पर अपने विचार ही व्यक्त नहीं किये अपितु वे स्वयं दलितों के सम्पर्क में रहे तथा उनके हाथ से भोजन एवं जल इत्यादि ग्रहण करके एक क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन की षुरुआत की। इसके लिए उन्हें अनेक विरोधों एवं कटु आलोचनाओं का सामना भी करना पड़ा। उनका इस तरह का विचार एवं व्यावहारिक कदम यह सिद्ध करता है कि वे समाज में सबके कल्याण का चिन्तन करने वाले विचारक थे।

यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन किया जाय तब यह स्पश्ट होता है कि वे समानता एवं लोकल्याण के लिए शिक्षा को अपरिहार्य मानते थे। उन्होंने कहा है कि "गुरुकुल में विद्यार्थियों के पारिवारिक एवं आर्थिक स्तर के आधार पर कोई भेद–भाव न किया जाय। चाहे राजकुमार हों अथवा रंक सबके बच्चों को समान शिक्षा दी जाय ताकि उनमें ऊँच–नीच, गरीब–अमीर का भेद न बने और वे हीनता की भावना से ग्रस्त न हों"।[9] परम्परागत एवं रुढ़िवादी दृष्टिकोण को त्यागकर दयानन्द ने शूद्रों एवं स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष बल दिया। उनका मत है कि प्रारम्भ से ही स्त्रियों को विदुषी बनाने का प्रयास किया जाता था। किन्तु मध्यकालीन संस्कृति के कारण स्त्रियों की शिक्षा में गिरावट आयी। उनका कहना है कि स्त्रियाँ भी उच्च शिक्षा प्राप्त करके अपने अनुकूल पति का वरण करें। यदि स्त्रियाँ शिक्षित होंगी तो उनकी सन्ताने भी सुशिक्षित होंगी।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वामी दयानन्द का राज्य सम्बन्धी सम्पूर्ण चिन्तन राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए नहीं अपितु राज्य को लोक कल्याण में लगे रहने की प्रेरणा देने वाला है। उन्हें समानता आधारित लोककल्याण की कल्पना करने वाला और उसे व्यावहारिक रूप देने वाला चिन्तक कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।

शोध–पत्र का सारांश– स्वामी दयानन्द सरस्वती का वेदों की महानता का बखान करने वाला चिन्तन केवल धर्म प्राणित चिन्तन नहीं था। उन्होंने वदों की वैज्ञानिक एवं नवीन व्याख्या करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि समाज में सभी लोग समान हैं। सबको समाज में सम्मान मिलना ही चाहिए। इसीलिए उन्होंने सामाजिक कुरीतियों को मिटाने का समर्थन ही नहीं किया अपितु उसमें राज्य के हस्तक्षेप को उचित माना। जिस तरह वे अपने राजनीतिक, सामाजिक एवं शैक्षिक चिन्तन में राज्य का हस्तक्षेप स्वीकार करते हैं वह राज्य की शक्ति में वृद्धि के लिए नहीं अपितु जनकल्याण के लिए था। स्त्रियों के शिक्षा, अछूतोद्वार का कार्यक्रम, राजा की शिक्षा, राजा को गलत कार्यों के लिए सामान्य जन से अधिक दण्ड देने का प्रावधान आदि विचारों को गहराई से देखा जाय तो सबका उद्देश्य केवल जन कल्याण की भावना ही है। अन्ततः यह कहना ज्यादा सुसंगत है कि वेदों से प्रारम्भ होकर उनका चिन्तन लोककल्याण की अवधारणा के रूप में समाप्त होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हर विलास शारदा : 'लाइफ ऑफ दयानन्द सरस्वती', परोपकारिणी सभा, अजमेर, 1968, पृश्ठ–352
2. स्वामी दयानन्द सरस्वती : 'सत्यार्थ प्रकाश', वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, 1965, पृष्ठ–131
3. वी0बी0 मजूमदार : 'History of Indians Social and Political Ideas : From Ram Mohan Rai to Dayanand', ब्रुकलैण्ड प्रकाशन, कलकत्ता, 1967, पृष्ठ–251
4. स्वामी दयानन्द सरस्वती : 'सत्यार्थ प्रकाश', वही, पृष्ठ–128
5. स्वामी दयानन्द सरस्वती : वही, पृष्ठ–133
6. स्वामी दयानन्द सरस्वती : वही, पृष्ठ–145
7. स्वामी दयानन्द सरस्वती : वही, पृष्ठ–160
8. वी0वी0 मजूमदार : वही, पृष्ठ–247
9. स्वामी दयानन्द सरस्वती : 'सत्याथ प्रकाश', वही पृष्ठ–37

*****